महाराष्ट्री प्राकृत में मूल 'य' वर्ण का अभाव

डा० सुदर्शन लाल जैन

प्राकृत वैयाकरणों ने संस्कृत के शब्दों को मूल मानकर प्राकृत भाषा का अनुशासन किया है। महाराष्ट्री प्राकृत में संस्कृत के मूलवर्ण 'य' का अभाव है क्योंकि संस्कृत शब्दों में जहाँ भी 'य' वर्ण आता है उसका सामान्यरूप से—आदि वर्ण होने पर 'ज' हो जाता है, संयुक्तावस्था में तथा दो स्वरों के मध्य में होने पर लोप हो जाता है। साहित्यिक महाराष्ट्री प्राकृत में जहाँ कहीं भी 'य' वर्ण दिखलाई देता है वह मूल संस्कृत का 'य' नहीं है अपितु लुप्त व्यञ्जन के स्थान पर होने वाली लघुप्रयत्नोच्चारित 'य' ध्वनि (श्रुति = श्रुतिसुखकर) है। इसकी पुष्टि प्राकृत-व्याकरण के नियमों से तथा प्राचीन लेखों से होती है। महाराष्ट्री प्राकृत में वर्ण-लोप सर्वाधिक हुआ है जिससे कहीं-कहीं स्वर ही स्वर रह गए हैं।

मूल संस्कृत के 'य' वर्ण में होने वाले परिवर्तन निम्न हैं—

१. पदादि 'य' का 'ज' होता है।[1] जैसे—यशः>जसो, युग्मम्>जुग्गं, यमः>जमो; याति>जाइ, यथा>जहा, यौवनम्>जोव्वणं। 'पदादि में न होने पर 'ज' नहीं होता' इसके उदाहरण के रूप में आचार्य हेमचन्द्र अपनी वृत्ति में अवयवः>अवयवो और विनयः>विणओ इन दो उदाहरणों को प्रस्तुत करते हैं।[2] यहाँ 'विनय' के 'य' का लोप स्पष्ट है जो आगे के नियम से (दो स्वरों के मध्य होने से) हुआ है। अवयवों में जो 'य' दिखलाई पड़ रहा है वह वस्तुतः 'य' श्रुति वाला 'य' है जो 'य' लोप होने पर हुआ है। अतः इसका रूप 'अअओ' भी होता है। यहाँ दो स्वरों के मध्यवर्ती 'य' लोप में तथा 'य' श्रुति में कोई प्रतिबन्धक कारण नहीं है।

यहीं आचार्य हेमचन्द्र बहुलाधिकार से सोपसर्ग अनादि पद में भी 'य' के 'ज' का विधान भी करते हैं। जैसे—संयमः>संजमो, संयोगः>संजोगो, अपयशः>अवजसो।[3] वररुचि ने भी इस संदर्भ में अयशः>अजसो यह उदाहरण दिया है।[4] हेमचन्द्र आगे इसका प्रतिषेध करते हुए (सोपसर्ग 'य' का 'ज' नहीं होता) प्रयोगः>पओओ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जिसमें 'य' का लोप हुआ है।[5] यहीं पर पदादि 'य' लोप का भी उदाहरण आर्षप्रयोग के रूप में दिया है—यथाख्यातम्>अहक्खायं; यथाजातम्>अहाजायं।[6] 'यष्टि' शब्दस्थित पदादि 'य' का 'ल' विधान किया गया है। जैसे—यष्टिः>लट्ठी। खड्गयष्टि और मधुयष्टि में भी य को ल हुआ है। जैसे

१. आदेर्यो जः। हेम० ८.१.२४५। वर० २. ३१ ।
२. हेम० ८.१.२४५ वृत्ति।
३. वही, वृत्ति।
४. वर० २.२ ।
५. हेम ८.१.२४५ वृत्ति।
६. वही।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खग्गलट्ठी, महुलट्ठी[1]। अन्यत्र भी 'य' का 'ज' होता है,इसके उदाहरण आगे विशेष परिवर्तन में दिखलावेंगे।

२. स्वर-मध्यवर्ती 'य' का लोप होता है। जैसे–दयालुः>दयालू; नयनम्>नयणं (णयणं); वियोगः>विओओ। ये तीन उदाहरण हेमचन्द्र ने 'य' लोप के दिए हैं।[2] यहाँ 'दयालू' और 'नयणं' इन दो उदाहरणों में स्थित 'य' को देखकर लगता है मानो 'य' लोप नहीं हुआ है, मूल संस्कृत का 'य' ही है, जबकि स्थिति यह है कि यहाँ दृश्यमान् 'य' लघुप्रयत्नोच्चारित 'य' श्रुति वाला है जो 'य' लोप के बाद 'अ' उद्वृत्त स्वर के रहने पर हुआ है। इसीलिए इन दोनों उदाहरणों को हेमचन्द्र 'य' श्रुति में भी देते हैं।[3]

इससे यह सिद्ध होता है कि स्वर मध्यवर्ती 'क, ग' आदि वर्णों का लोप तो प्रायः होता है परन्तु 'य' का नित्य लोप होता है यदि कोई अन्य परिवर्तन न हो। 'य' की स्थिति अन्य वर्णों से भिन्न है। संस्कृत से प्राकृत में परिवर्तित होते समय संयुक्त व्यञ्जन वर्णों के बलाबल के संदर्भ में भाषा वैज्ञानिकों ने 'य' को कमजोर वर्ण माना है। सिर्फ 'र' ही ऐसा वर्ण है जो 'य' से कमजोर बतलाया है (ल स व य र–क्रमशः निर्बलतर)।[4] परन्तु जब 'य' और 'र' का संयोग होता है तब वहाँ भी 'य' हट जाता है अथवा य को सम्प्रसारण (इ) हो जाता है। जैसे—भार्या>भज्जा (भारिया), सौन्दर्यम्>सुन्दरिअं।

इसीलिए हेमचन्द्राचार्य ने सूत्र में प्रयुक्त 'प्रायः' की व्याख्या करते हुए वृत्ति में लोपाभाव के जो उदाहरण दिए हैं उनमें 'य' लोपाभाव का एक भी उदाहरण नहीं दिया है जब कि 'ग' और 'व' के लोपाभाव के तीन-तीन उदाहरण दिए हैं तथा शेष वर्णों के लोपाभाव का एक-एक उदाहरण दिया है। वहाँ 'पयागजलं' (प्रयागजलम्) जो उदाहरण दिया गया है वह क्रमप्राप्त 'ग' लोपाभाव का उदाहरण है, न कि 'य' लोपाभाव का।

वररुचि ने प्रायः शब्द की व्याख्या में 'य' से सम्बंधित लोपाभाव का एक उदाहरण दिया है 'अयशः>अजसो।[5] यहाँ 'य' का 'ज' हुआ है। वस्तुतः यह नञ समासत पदादि वर्ण है।

३ 'य' श्रुति—'क, ग' आदि वर्णों का लोप होने पर यदि वहाँ 'अ, आ' शेष रहे तथा अवर्ण परे (पूर्व में) हो तो लुप्त व्यञ्जन के स्थान पर लघु-प्रयत्नतर 'य' श्रुति होती है।[6] जैसे –तीर्थंकरः>तित्थयरो, तित्थअरो; नगरम्>णयरं, नअरं; काचमणिः>कायमणी; रजतम्>रययं; मदनः>मयणो, मअणो; विपुलम्>वियुलं, विउलं; दयालुः>दयालू; लावण्यम्>लायण्णं। यह नियम 'अ' स्वर शेष रहने पर ही लागू होता है, अन्य स्वर शेष रहने पर प्रायः नहीं प्रयुक्त होता है। जैसे–वायुः>वाऊ, राजीवम्>राईवं। कभी-कभी अवर्ण पूर्व में न रहने पर भी 'य' श्रुति होती है। जैसै–पिबति–पियइ।

---

१. यत्र्यां लः। वर० २. ३२ तथा वृत्ति (भामहकृत)। हेम० ८.१.२४७।

२. कगचजतदपयवां प्रायो लुक्। हेम० ८.१.१७७। वर० २.२।

३. अवर्णो यश्रुतिः। हेम० ८.१.१८०।

४. प्राकृत–दीपिका, पृ० १६।

५. वर० २.२ वृत्ति।

६. हेम० ८. १. १८०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुतः यह जैनमहाराष्ट्री की विशेषता है तथा वैकल्पिक है। यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है कि वररुचि ने 'य' श्रुति विधायक सूत्र नहीं बनाया है। अतः उनके द्वारा प्रयुक्त उदाहरणों में एक भी 'य' वाला उदाहरण नहीं है।

मूल 'य' और लघुप्रयत्नतर 'य' वर्ण के उच्चारण में भिन्नता रही है, अतः दोनों एक नहीं हैं। वस्तुतः यहाँ 'य' श्रुति कहने का यही तात्पर्य है 'जो सुनने में 'य' जैसा लगे, दस्तुतः 'य' न हो, संस्कृत वैयाकरणों ने इसे अधिक स्पष्ट किया है।[1]

४. **सम्प्रसारण**—'य' की गणना अर्धस्वरों में की जाती है। अतः कभी-कभी संयुक्त और असंयुक्त उभय अवस्थाओं में 'य' का सम्प्रसारण (य>इ) हो जाता है।[2] जैसे–चोरयति>चोरेइ (चोर>इति>इइ=चोरेइ), कथयति>कहेइ, व्यतिक्रान्तम्>वीइक्कंतं, प्रत्यनीकम्>पडिणीयं, सौन्दर्यम्>सुन्दरिअं।

५. **संयुक्त 'य' का लोप**—संयुक्त 'य' का लोप होता है। प्राकृत की प्रकृति के अनुसार प्राकृत में भिन्नवर्गीय संयुक्त व्यञ्जन नहीं पाए जाते। उनमें से या तो एक का लोप करके और दूसरे का द्वित्व करके समानीकरण कर दिया जाता है या स्वरभक्ति। जैसे–**लोप**–मन्त्र>मन्त, शस्त्र>सत्थ। **स्वरभक्ति**–स्मरण>सुमरण, द्वार>दुवार। यह स्वरभक्ति प्रायः अन्तःस्थ या अनुनासिक वर्णों के संयुक्त होने पर ही देखी जाती है।

६. **संयुक्त 'य' का प्रभाव**—(क) यदि संयुक्त वर्ण समान बल वाले होते हैं तो पूर्ववर्ती वर्ण का लोप करके परवर्ती वर्ण का द्वित्त्व कर दिया जाता है। यदि असमान बल वाले वर्ण होंते हैं तो कम बलवाले का लोप करके अन्य वर्ण का द्वित्व कर दिया जाता है।[3] जैसे—उत्पलम्>उप्पलं, काव्यम्>कव्वं, शल्यम्>सल्लं वयस्य>वअस्स, अवश्यम्>अवस्सं, चाणक्य>चाणक्क।

(ख) यदि लोप होने पर द्वितीय या चतुर्थ वर्ण का द्वित्त्व होता है तो पूर्ववर्ती वर्ण को क्रमशः प्रथम या तृतीय वर्ण में बदल दिया जाता है। जैसे—व्याख्यानम्>वक्खाणं, अभ्यन्तर>अब्भंतर।

(ग) **ऊष्मादेश**—ऊष्म और अन्तःस्थ वर्णों का संयोग होने पर अन्तःस्थ को ऊष्मादेश होता है (य र व श ष स इन वर्णों का लोप होने पर यदि इनके पहले या बाद में श ष स वर्ण हों तो उस सकार के आदि स्वर को द्वित्वाभाव पक्ष में दीर्घकर दिया जाता है)। जैसे—शिष्यः–सीसो,

---

१. व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य। अष्टाध्यायी (८.३.१८)
पदान्तयोर्वकारयकारयोर्लघुच्चारणौ वयौ वा स्तोऽशि परे। यस्योच्चारणे जिह्वाग्रोपाग्रमध्यमूलानां शैथिल्यं जायते स लघूच्चारणः। वही, भट्टोजिदीक्षितवृत्ति।
लघुः प्रयत्नः यस्योच्चारणे स लघुप्रयत्नः। अतिशयितः लघुप्रयत्नः लघुप्रयत्नतरः। प्रयत्ने लघुतरत्वं चैषां शैथिल्यजनकत्वमेव।

२. प्राकृत दीपिका, पृ० ८।

३. बलाबल का निम्न क्रम स्वीकृत है—
(क) वर्ग के प्रथम चार वर्ण–सबसे अधिक बलवान् परन्तु परस्पर समान बलवाले।
(ख) वर्ग के पञ्चम वर्ण—प्रथम चार वर्णों से कम बल वाले परन्तु परस्पर समान बल वाले।
(ग) ल स व य र—सबसे कम बल वाले तथा क्रमशः निर्बलतर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(घ) **तालव्यादेश**—त्य थ्य द्य ध्य को क्रमशः च छ ज झ आदेश होते हैं[1] पश्चात् द्वित्वादि कार्य। जैसे—अत्यन्तम्>अच्चन्तं। प्रत्यक्षम्>पच्चक्खं, मिथ्या>मिच्छा, रथ्या>रच्छा, उद्यानम्>उज्जाणं, विद्या>विज्जा, उपाध्यायः>उवज्झाओ।

(ङ) आदि वर्ण के संयुक्त होने पर कमजोर वर्ण का लोपमात्र होता है, द्वित्व नहीं। यदि कमजोर वर्ण का लोप नहीं होता है तो स्वरभक्ति कर दी जाती है। जैसे—न्यायः>णायो, स्वभावः>सहावो, व्यतिकरः>बइयरो, ज्योत्स्ना>जोण्हा, त्यजति>चयइ, श्यामा>सामा, स्नेहः>सणेहो, स्यात्>सिया, ज्या>जीआ।

७. **विशेष परिवर्तनः** (जहाँ 'य' भिन्न-भिन्न रूपों में परिवर्तित हुआ है)—

(क) **य>ज्ज**—उत्तरीय शब्द में, अनीय, नीय तथा कृदन्त के 'य' प्रत्यय को विकल्प से ज्ज होता है।[2] जैसे—उत्तरीयम्>उत्तरिज्जं उत्तरीअं, करणीयम्>करणिज्जं करणीअं, यापनीयम्>जवणिज्जं जवणीअं, द्वितीयः>बिइज्जो, बीओ। तृतीयः>तइज्जो तइओ, प्रेया>पेज्जा पेआ।

(ख) **य>ह**—परछाईं अर्थ में छाया शब्द के 'य' को विकल्प से 'ह' होता है।[3] जैसे—वृक्षस्य छाया>वच्छस्स छाही वच्छस्स छाया। कान्ति अर्थ में नहीं हुआ। जैसे—मुखच्छाया>मुहच्छाया।

(ग) य>व, आह (डाह)—'कतिपय' शब्द के 'य' को पर्यायक्रम से 'आह' और 'व' आदेश होते हैं।[4] जैसे—कतिपयम्>कइवाहं, कइअवं।

(घ) य>ल'—यष्टि' के 'य' को 'ल' होता है।[5] जैसे>यष्टिः>लट्ठी

(ङ) य>त—'तुम' अर्थ में 'युष्मद्' शब्द के 'य' को 'त' होता है।[6] जैसे—युष्मादृशः, तुम्हारिसो, युष्मदीयः—तुम्हकेरो। 'तुम' अर्थ न होने पर 'त' नहीं होगा। जैसे—युष्मदस्मत्प्रकरणम् (अमुक-तमुक से सम्बन्धित) >जुम्ह-दम्ह-पयरणं।

(च) य>स्वरसहित लोप—'कालायस' के 'य' का विकल्प से अकारसहित लोप होता है।[7] जैसे—कालायसम्>कालासं, कालाअसं, किसलयम्>किसलं किसलअं।

(छ) स्त्य>ठ—'स्त्यान' के 'स्त्य' को 'ठ' विकल्प से होता है।[8] जैसे—स्त्यानम्>ठीणं, थीणं।

(ज) न्य>ज, ञ्ज—अभिमन्यु के 'न्य' को 'ज' 'ञ्ज' आदेश विकल्प से होते हैं।[9] जैसे—अहिमज्जू, अहिमञ्जू अहिमन्नु।

---

१. अ—त्यथ्यद्यां च छ ज।
२. वोत्तरीयानीय—तीयकृद्ये ज्यः। हेम० ८. १. २४८।
३. छायायां हो कान्तौ वा। हेम० ८. १. २४९।
४. डाह वौ कतिपये। हेम ८. १.२५०।
५. यष्ट्यां लः। वर० २.३२ तथा वृत्ति भामहकृत। हेम० ८-१-२४७।
६. युष्मद्यर्थपरे तः। हेम० ८. १. २४६।
७. वर ४.३ तथा वृत्ति।
८. स्त्यान-चतुर्थार्थे वा। हेम० ८.२.३३।
९. अभिमन्यौ जञ्जौ वा। हेम० ८.२.२५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(झ) थ्य>छ–ह्रस्व स्वर परे रहते 'थ्य' को 'छ' होता है।[1] जैसे—पथ्यम्>पच्छं, मिथ्या>मिच्छा, सामर्थ्यम्>सामच्छं (सामत्थं भी होता है)।

(ञ) थ्य–>च–आर्ष प्राकृत में थ्य को च होता है।[2] तथ्यम्>तच्चं।

(ट) य्य, र्य द्य>ज्ज–य्य, र्य और द्य को 'ज्ज' होता है।[3] जैसे—जय्य>जज्जो, शय्या>सेज्जा, भार्या>भज्जा (भारिआ), कार्यम्>कज्जं, पर्यायः>पज्जाओ सूर्यः>सुज्जो, मर्यादा>मज्जाया, मद्यम्>मज्जं, वेद्यः>वेज्जो, द्युतिः>जुई, द्योतः>जोओ।

(ठ) र्य>र (जापवाद)—ब्रह्मचर्य, तूर्य, सौन्दर्य और शौण्डीर्य के 'य' को 'र' होता है।[4] जैसे—ब्रह्मचर्यम्>बह्मचेरं तूर्यम्>तूरं, सौन्दर्यम्>सुन्देरं (सुन्दरिअं), शौण्डीर्यम्>सोण्डीरं। ['एत' परे रहते—पर्यन्तः>पेरन्तो (पज्जन्तो)]

(ड) र्य>रं–धैर्य के 'र्य' को 'रं' विकल्प से होता है।[5] जैसे>धैर्यम्-धीरं, धिज्जं। [एत परे रहते-आश्चर्यम्>अच्छेरं]

(ढ़) र्य>रिअ, अर, रिज्ज, रीअ—आश्चर्य शब्द में अकार परे रहते 'र्य' को 'रिअ' आदि आदेश होते हैं।[6] जैसे—अच्छरिअं, अच्छअरं, अच्छरिज्जं, अच्छरीअं।

(ण) र्य>ल्ल—पर्यस्त, पर्याण और सौकुमार्य शब्दों के 'र्य' को 'ल्ल' होता है।[7] जैसे—पर्यस्तम्>पल्लट्ट पल्लत्थं; पर्याणम्>पल्लाणं; सौकुमार्यम्>सोअमल्लं। (पल्यङ्क>पल्लङ्क पलिअंक ये भिन्न-प्रक्रिया के उदाहरण हैं)।

(त) ध्य, ह्य>झ[8]। जैसे—ध्यानम्>झाणं, उपाध्यायः>उवज्झाओ, बध्यते>वज्झए, स्वाध्यायः>सज्झाओ, मह्यम्, मज्झं, गुह्यम्>गुज्झं, नह्यति>णज्झइ, सह्यम्>सज्झं, अनुग्राह्या>अणुगेज्झा।

उपसंहार—इस तरह हम देखते है कि महाराष्ट्री प्राकृत में मूल 'य' वर्ण का अभाव है उसमें लघुप्रयत्नोच्चारित 'य' श्रुतिरूप से जो 'य' वर्ण दिखलाई देता है वह जैन महाराष्ट्री का परवर्ती प्रभाव है। यह 'य' श्रुति वस्तुतः मूल 'य' वर्ण नहीं है अपितु तत्सदृश सुनाई पड़नेवाली भिन्न ध्वनि है जिसे लघुप्रयत्नोच्चारित श्रुति कहा गया है और जो 'अ' उद्वृत्तस्वर (लुप्त व्यञ्जन वाला स्वर) के स्थान पर होती है। संस्कृत वैयाकरण पाणिनि आदि ने भी 'य्' और लघुप्रयत्नोच्चारित 'य्' में भेद किया है।

जिन संस्कृत शब्दों में 'य' वर्ण पाया जाता है वे महाराष्ट्री प्राकृत में परिवर्तित होते समय 'य'-विहीन हो जाते हैं। पदादि में, पदान्त में तथा संयुक्तावस्था में तो 'य' वर्ण दिखलाई

१. ह्रस्वात् थ्य-श्च-त्स-प्सामनिश्चले। हेम० ८.२.२१ तथा वृत्ति। सामर्थ्योत्सुकोत्सवे वा। हेम० ८.२.२२।
२. वही।
३. द्यय्यर्यां जः। हेम० ८.२.२४।
४. ब्रह्मचर्य-तूर्य-सौन्दर्य-शौण्डीर्ये र्यो रः। हेम० ८.२.६३। एतः पर्यन्ते। हेम० ८.२.६५
५. धैर्ये वा। हेम० ८.२.६४। आश्चर्ये। हेम० ८.२.६६।
६. अतो रिआर-रिज्ज-रीअं। हेम० ८.२.६७।
७. पर्यस्त-पर्याण–सौकुमार्ये ल्लः। हेम० ८.२.६८।
८. साध्वस ध्य-ह्यां झः। हेम० ८.२.२६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही नहीं पड़ता है। यदि कहीं दिखलाई देता भी है तो वह दो स्वरों के मध्य में, वह भी अवर्ण परे अवर्ण स्वर के साथ जहाँ 'य' श्रुति हो सकती है। अतः शंका ऐसे स्थलों पर ही अवशिष्ट रहती है। इस संदर्भ में निम्न हेतुओं से उस शंका का निवारण कर लेना चाहिए---

(१) हेमचन्द्र ने स्वरमध्यवर्ती 'य' लोप के जो दो उदाहरण (दयालू और नयणं) दिए हैं उनमें 'य' विद्यमान है जो वहाँ 'य' लोप के बाद पुनः होने वाली 'य' श्रुति का द्योतक है, मूल यकार का नहीं।

(२) हेमचन्द्र 'प्रायः' की व्याख्या करते समय 'य' लोपाभाव का एक भी उदाहरण नहीं देते जबकि 'क ग' आदि के लोपाभाव के उदाहरण देते हैं।

(३) वररुचि ने जो 'य' लोपाभाव का उदाहरण दिया है वहाँ भी य > ज में परिवर्तित हो गया है।

(४) वररुचि ने महाराष्ट्री प्राकृत में न तो 'य' श्रुति का विधान किया है और न 'य' युक्त किसी पद को उदाहरण के रूप में अपने ग्रन्थ में कहीं दिया है। हेमचन्द्र जहाँ 'य' श्रुति का प्रयोग करते हैं वहाँ वररुचि उद्वृत्त 'अ' का प्रयोग करते हैं। हेमचन्द्र से वररुचि पूर्ववर्ती हैं। 'य' श्रुति बाद का विकास है। अतः 'य' का नित्य लोप होना चाहिए।

(५) संस्कृत व्याकरण में भी लघुप्रयत्नोच्चारित 'य' का उल्लेख मिलता है जिससे 'य' श्रुति की मूल 'य' से भिन्नरूपता सिद्ध होती है।

(६) प्राचीन महाराष्ट्री साहित्यिक भाषा में 'य' श्रुति का भी प्रयोग नहीं है। 'य' श्रुति सुखोच्चारणार्थ आई है जिसकी ध्वनि 'य' से मिलती-जुलती है, परन्तु 'य' नहीं है। अतः श्रुति शब्द का प्रयोग उसके साथ किया गया है, "य' होता है' ऐसा नहीं कहा गया।

(७) "य' का नित्यलोप होता है' ऐसा न कहने का कारण है 'य' में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों को बतलाना तथा सूत्रों को लघुरूपता देना।

(८) 'र' जो कि सबसे कमजोर वर्ण है उसके साथ संयुक्त होने पर भी 'य' या तो 'इ' स्वर में बदल जाता है या हट जाता है और 'र' रह जाता है।

(९) समान वर्गीय वर्ण संयुक्तावस्था में पाए जाते हैं परन्तु दो य् संयुक्त (य्+य्) भी नहीं पाए जाते। अन्तःस्थ ल और व स्व वर्गीय वर्ण के साथ संयुक्त पाए जाते हैं।

(१०) 'य्' के साथ कहीं भी स्वरभक्ति नहीं देखी जाती।

इन सभी संदर्भों से सिद्ध है कि महाराष्ट्री प्राकृत में मूल संस्कृत के 'य' वर्ण का सर्वथा अभाव है। मागधी आदि प्राकृत भाषाओं की स्थिति भिन्न है। मागधी में न केवल मूल 'य' पाया जाता है अपितु वहाँ 'ज' का भी 'य' होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org